भाद्र शुक्ल १०, शनिवार, दिनांक - २४-०९-१९६६
गाथा-१३, श्लोक-८, प्रवचन - ५७

.... पहली दृष्टि और फिर **तृण का छेदमात्र भी न चाहे...** ऐसी इच्छा निरोध में स्थिरता करना, उसका नाम संयम कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : .... नहीं रखना, ऐसा नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : रखने-रखने का है कहाँ? मुनि को तृण है ही नहीं। परन्तु दूसरे का तृण है, उसका भी मैं छेद कर सकता हूँ, ऐसी दृष्टि तो है नहीं, परन्तु अस्थिरता में तृण का छेद करने का विकल्प भी नहीं।

श्रीमद् राजचन्द्र एक पत्र में लिखते हैं, दूसरी भाषा से-गूढ़ भाषा से। हमारे में तिनके के दो टुकड़े करने की भी सामर्थ्य नहीं। एक पत्र में है। तिनके के दो टुकड़े करने की सामर्थ्य नहीं। ऐसा कहकर कहते हैं कि आत्मा जड़ की पर्याय का कर्ता नहीं। एक तृण के दो टुकड़े होना, वह अपना कार्य नहीं। समझ में आया? ऐसी इच्छा कि मैं कर सकता हूँ, वह तो मिथ्यादृष्टि है। परन्तु यह दृष्टि छूट जाने के बाद भी तृण के दो टुकड़े की वृत्ति जो है—अस्थिरता है, उसे भी छोड़कर स्थिरता करना, उसका नाम संयमभाव है। यहाँ आचार्य यह कहते हैं। संयमभाव समझ में आता है?

यह सब बड़ा-बड़ा करते हैं न? कौन करता है? एक आँख की पलक फिरकती है, वह अपने से नहीं। समझ में आया? पांपण कहते हैं न? क्या कहते हैं? (पलक) ऐसे फिरकना वह अपने आधीन नहीं है। वह तो पुद्गल की पर्याय है। क्षेत्रान्तर होना, ऊँचा-नीचा होना, वह तो पुद्गल की क्षेत्रान्तर होने की सामर्थ्य से होती है। आत्मा उसे नहीं कर सकता। आहाहा! कठिन बात, भाई! अनन्त शक्तिवान है न? अनन्त शक्तिवान है या नहीं आत्मा? तो पर का कर सकता है या नहीं? अपने में अनन्त शक्ति से राग का

अभाव करके वीतरागता प्राप्त कर सकता है, पर में किंचित् भी नहीं कर सकता। एक तिनके के दो टुकड़े भी तीन काल-तीन लोक में। समझ में आया? ऐसी प्रथम अपनी दृष्टि में सम्यक्ता आयी है, पश्चात् तृण का छेद करने की वृत्ति भी नहीं। वृत्ति नहीं, यह बात है यहाँ। संयम है या नहीं? दूसरे को दुःख देना, वह तो नहीं परन्तु इतनी इच्छा भी नहीं। ऐसी वृत्ति के अभाव का नाम सम्यग्दर्शनसहित संयम कहा जाता है। समझ में आया? संयम की व्याख्या यह साधारण मानते हैं कि लो, यह वस्त्र / कपड़े छोड़ दिये, नग्न हो गये, वह संयम। ऐसा संयम है ही नहीं।

अपने शुद्ध आनन्द की रक्षा। **'जीवरक्खणपरो।'** परन्तु निज शुद्ध चैतन्य की अन्दर राग की उत्पत्ति न होना और अहिंसा स्वभाव वीतराग की पर्याय की उत्पत्ति होना, उसका नाम अहिंसारूप संयमभाव है। समझ में आया? पर की दया का भाव विकल्प उठता है, वह भी राग है। वह राग वास्तव में तो हिंसा है। संयम नहीं। भाई! स्पष्टीकरण करते हैं। उतना राग दोष है। समझ में आया? इच्छामात्र जो होती है, सब दुःखदायक है। शुभ इच्छा हो या अशुभ इच्छा हो, सब दुःखदायक है। व्रत के परिणाम हों या दया के परिणाम हों, इच्छा दुःखदायी है। उस दुःखदायी वृत्ति का छेद करके स्वरूप में एकाग्रता होना, उसका नाम परमात्मा संयम कहते हैं। यह छठवें दिन की बात हुई। चार दिन बाकी रहे।

अपने चलते हैं नौ तत्त्व। कहाँ आया? अन्तिम दो लाईनें रही, देखो! जिनेश्वरदासजी कहते हैं न अनुभूति। देखो! यह अनुभूति शब्द इसमें आया।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! चौथे गुणस्थान की बात है। यह चौथे की बात है। समझ में आया? देखो! न्याय से समझो। न्याय से कहा जाता है। देखो! यहाँ आया है। भावार्थ के ऊपर चौथी लाईन है। भावार्थ है न? उसके ऊपर चौथी।

इस प्रकार यह, एकत्वरूप से प्रकाशित होता हुआ शुद्धनयरूप से अनुभव किया जाता है। क्या कहते हैं? देखो! **इस प्रकार यह...** इस प्रकार यह, इसका अर्थ— नौ तत्त्व का भेद जो विकल्प है, निज शुद्ध अन्तःतत्त्व से अन्तःतत्त्व जो है, उसमें से

बहिर्तत्त्व के ऊपर लक्ष्य जाने से उसमें विकल्प उत्पन्न होते हैं। समझ में आया? अन्त:तत्त्व जो है, अन्त:तत्त्व है, उसकी दृष्टि करने से, शुद्धनय का आदर करने से अकेला चैतन्य एकत्व में प्रकाशमान होता है। देखो! **प्रकाशित होता हुआ शुद्धनयरूप से अनुभव किया जाता है।** परन्तु बाह्य लक्ष्य में आता है, अन्तर्मुख नहीं होकर बहिर् बन्ध पर्याय का लक्ष्य करने से अन्दर नौ तत्त्व के विकल्प की उत्पत्ति होती है।

वस्तु है, वह अन्तर्मुख है। समझ में आया? चैतन्यबिम्ब, अनन्त गुण का पिण्ड, अन्तर्मुख है। अन्तर्मुख दृष्टि करने से शुद्धनय से देखने में आवे तो अकेला आत्मा प्रकाशमान दिखाई देता है। इसका नाम भूतार्थदृष्टि से आत्मा जाना और इसका नाम सम्यग्दर्शन और अनुभूति कहते हैं। समझ में आया? **इस प्रकार यह, एकत्वरूप से प्रकाशित होता हुआ...** बहिर्दृष्टि में नौ तत्त्व के अन्तर्मुख स्वभाव के भाव को छोड़कर अकेले परसन्मुख के लक्ष्य से जीव, अजीव, पुण्य-पाप नौ तत्त्व के विकल्प की वृत्ति जो उत्पन्न होती थी, उसका भाव तो नौ तत्त्व का अनुभव, एकान्त उनका ही अनुभव, वह तो मिथ्यात्व है। उसमें से एकस्वरूप चिदानन्द प्रभु ज्ञायक प्रकाशमान अन्तर्मुख दृष्टि करने से **एकत्वरूप से प्रकाशित होता हुआ...** एक स्वरूप। वे नौ भेद पड़ते थे। बहिर्मुख दृष्टि में नौ के विकल्प उत्पन्न होते थे, वे अन्तर्मुख स्वभाव की दृष्टि करने से वह **एकत्वरूप प्रकाशित होता हुआ...** ओहो! **शुद्धनयरूप से अनुभव में आता है।** शुद्धनय का अर्थ ध्रुव स्वभाव चैतन्यमूर्ति ज्ञायक का अन्तर्मुख (होकर) अन्तर आश्रय करके अनुभव किया जाता है।

और जो यह अनुभूति है... देखो! अनुभव किया जाता है। आहाहा! चैतन्यस्वरूप बहिर्मुख पर्याय का लक्ष्य जो बहिर्मुख था, उसमें नौ तत्त्व के विकल्प उठते थे। वह तो अनादि की दशा है। उसमें से एकत्व, नौ में से भिन्न पाड़कर एकत्व चैतन्यप्रकाश में एकत्व प्राप्त करके अनुभव होता है, उस अनुभव को अनुभूति कहते हैं। ओहो! समझ में आया? **सो आत्मख्याति (आत्मा की पहिचान) ही है,...** इस टीका का नाम है आत्मप्रसिद्धि। टीका का नाम ही अमृतचन्द्राचार्य महाराज ने आत्मख्याति दिया है। यह आत्मप्रसिद्धि हुई। एकरूप चैतन्यद्रव्य की ओर अन्तर्मुख दृष्टि करने से एकरूप प्रतिभास

होकर जो अनुभव हुआ, उसका नाम आत्मा की प्रसिद्धि हुई। शुद्ध आनन्दकन्द एकरूप है, ऐसा पर्याय में अनुभव हुआ तो आत्मा की प्रसिद्धि हुई। गजब बात, भाई! समझ में आया?

अनुभूति कहो, अनुभव कहो, शुद्धनय अनुसार दृष्टि कहो या आत्मख्याति कहो। यह चौथे गुणस्थान की बात है। समझ में आया? वस्तु एक है या नहीं? वस्तु एक है या नहीं? अनन्त गुणरूप एक है या नहीं? तो उसकी एकरूप दृष्टि होने से, एकरूप होने से प्रसिद्धि आत्मा की शुद्ध चिदानन्द है, ऐसा पर्याय में अनुभव हुआ। वह अनुभव हुआ कि यह आत्मा है, ऐसी प्रतीति हुई, उसका नाम सम्यग्दर्शन, अनुभूति, अनुभव कहा जाता है। स्वसंवेदन कहा जाता है। निर्विकल्प समाधि उसे कहा जाता है। उसे भाव मति-श्रुतज्ञान कहा जाता है, उसे वीतरागी अवस्था कहा जाता है। ... बहुत शब्द हैं। द्रव्यसंग्रह में बहुत लिये हैं। समझ में आया? कितने ही लिये हैं। ६८ या इतने बोल अनुभूति के लिये हैं। समझ में आया? द्रव्यसंग्रह नहीं होगी। नहीं। टीका में लिये हैं। द्रव्यसंग्रह में हैं। अनुभूति किसे-किसे कहना, उसके बहुत बोल हैं। यहाँ पुस्तक नहीं है। समझ में आया? द्रव्यसंग्रह है न? द्रव्यसंग्रह। उसमें पीछे है।

यहाँ कहते हैं, यह तो मूल बात है। इसने कभी यह दृष्टि की ही नहीं। और किस प्रकार से दृष्टि करना, इसकी विधि की पद्धति भी समझ में नहीं आयी। समझ में आया? भगवान आत्मा एक समय में पूर्ण एकरूप शुद्ध है। बाह्य दृष्टि में तो पर्याय में नौ भेद उत्पन्न होते हैं, वे आत्मा नहीं, वे तो अनात्मा हैं। नौ के भेद तो अनात्मा हैं। समझ में आया? आत्मा तो नौ प्रकार के विकल्प के अनुभव की दृष्टि छोड़कर अन्तर शुद्धनय द्वारा अन्तर स्वभाव की एकता को पकड़कर जो अनुभव किया जाता है, उसका नाम सम्यग्दर्शन, अनुभव और आत्मख्याति कहा जाता है। समझ में आया? यह चौथे गुणस्थान से आत्मा की प्रसिद्धि का डंका बजता है। मैं आत्मा शुद्ध आनन्दकन्द हूँ, ऐसा पर्याय में अनुभव में आया। मैं विकाररूप हूँ या भेदरूप हूँ या निमित्त के संग में हूँ, ऐसा है नहीं। समझ में आया? आहाहा!

वस्तु है न? वस्तु। वस्तु एक समय में पूर्ण एकरूप शुद्ध तत्त्व है। तत्त्व है या

नहीं? पदार्थ है या नहीं? अकेला शीतल शान्तरस का कन्द है या नहीं? 'शुद्ध चेतनासिन्धु हमारो रूप है'। शुद्ध चेतना, शुद्ध चेतना। अकेला आनन्द का सागर आत्मा, उस ओर अन्तर्मुख होकर शुद्धनय, वह वस्तु स्वरूप ही शुद्धनय अथवा ज्ञान का अंश, उस ओर जाये, वह शुद्धनय, उसमें अनुभव होता है। एकपना प्रकाशित होता है, नौ नहीं परन्तु एकपना प्रकाशित होता है। आहाहा! समझ में आया?

और जो आत्मख्याति है, सो सम्यग्दर्शन ही है। देखो! आत्माख्याति तो ज्ञान की पर्याय में प्रसिद्धि हुई। अनुभूति के साथ प्रतीति हुई तो उसे ही सम्यग्दर्शन कह दिया। समझ में आया? सम्यग्दर्शन है तो श्रद्धागुण की पर्याय। और आत्मख्याति अनुभूति है, वह ज्ञान की पर्याय है। परन्तु ज्ञान अनुभूति हुई, चेतना का भान (हुआ कि) यह शुद्ध है, स्वरूप-सन्मुख ढलकर जो अनुभूति (हुई), उसे ही यहाँ सम्यग्दर्शन कहा। समझ में आया? क्योंकि आत्मअनुभूति और सम्यग्दर्शन का एक समय में अविनाभाव है। समझ में आया? कहा था न? उसके (अनुभूति के) नाम?

परम ब्रह्मस्वरूप, परम विष्णुस्वरूप, परम शिवस्वरूप। यह पर्याय को, हों! सब कहते हैं। परम बुद्धस्वरूप, परम निजस्वरूप। समझे? स्वसंवेदनज्ञान, परम तत्त्वज्ञान, शुद्धात्मा का दर्शन। वही उत्कृष्ट अवस्थारूप है। परमात्मा के दर्शन, परम तत्त्वज्ञान, शुद्धात्म ज्ञान, ध्यान, योग, शुद्ध पारिणामिकभाव है, उस रूप है, पारिणामिक ध्यान में पर्याय आयी, हों! ध्यानभावस्वरूप, शुद्धचारित्र है, अन्तरंग तत्त्व है, ऐसे-ऐसे बहुत बोल हैं। बहुत बोल हैं। समझ में आया? ६५ हैं। वही परम समरसीभाव है। अन्त में लिया है। टीका में ६५ बोल लिये हैं। द्रव्यसंग्रह ५६ गाथा। ५६ गाथा में लिया है। आचार्य ने .... बहुत बात स्पष्ट की है। यह श्रुतज्ञान को कहा है, हों! समझे? उसे आत्मप्रतीति कहो, शुद्ध आत्मा की अनुभूति कहो, परमज्योति कहो, संविति कहो, निज आत्मा की प्राप्ति कहो, संविति अर्थात् साक्षात्कार कहो, निज पदार्थ की प्राप्ति कहो, समाधि कहो, परमानन्द कहो, नित्य आनन्द कहो, स्वभाव उत्पन्न हुआ, सदानन्द कहो, सहजानन्द कहो। समझे? भावश्रुत कहो, यह परमस्वाध्याय कहो। आहाहा! समझ में आया? शुद्ध चैतन्य एकरूप की अन्तरदृष्टि करके अनुभव करना, वही परम स्वाध्याय है। आहाहा! शास्त्र की स्वाध्याय है, वह तो विकल्प है। आहाहा! समझ में आया?

निश्चय मोक्ष का उपाय है, एकाग्र चिन्ता निरोध है, परम ज्ञान शुद्धउपयोग। देखो! शुद्धउपयोग कहा। चौथे में शुद्धउपयोग है। यहाँ से शुरु हो गया। कायम नहीं रहता। अनुभव के काल में तो शुद्धउपयोग है। अन्तर में ज्ञाता के ऊपर की दृष्टि से भेद दृष्टि छूट गयी, अभेद का अनुभव हुआ, वह शुद्धउपयोग है। समझ में आया? देखो! परमयोग है, भूतार्थ है, परमार्थ है, ज्ञान-दर्शन-चारित्र-वीर्य वास्तविक आचार है। वास्तविक आचार यह है। समयसार है, अध्यात्मसार है, निश्चय छह आवश्यक है, अभेदरत्नत्रय है, वीतराग सामायिक है, परमशान्त, मंगल इत्यादि... इत्यादि। बहुत बोल लिये हैं। ओहो! समझ में आया?

भावनारूप है, अमृतरूप है, परम अद्वैत है। धर्मध्यान है, वह शुक्लध्यान है। स्थिरता आगे बढ़ गयी तो शुक्लध्यान है। शास्त्र का मूल स्वाध्याय घट गया। और स्वाध्याय मूल जो अध्यात्म स्वाध्याय होना चाहिए, वह घट गया। बाहर के दूसरे स्वाध्याय में तत्त्वज्ञान की इतनी स्पष्टता नहीं। दूसरे में कोई पुण्य की बात बतावे चरणानुयोग में, कथानुयोग में... यह बात भगवान आत्मा द्रव्यानुयोग में वस्तु द्रव्य जो कहा, वैसा अन्दर में बोध हुए बिना कभी सम्यग्दर्शन-अनुभूति होती नहीं। और इसके अतिरिक्त कभी उसे चारित्र, व्रत, तप, नियम सच्चे होते नहीं।

मुमुक्षु : इस काल में ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इस काल में, तीनों कालों में होता नहीं। 'एक होय तीन काल में (परमारथ का पंथ)।' हल्का काल अर्थात्? केवलज्ञान के लिये हल्का काल। ऐसा लिखा है मोक्षमार्गप्रकाशक में। यह प्रश्न उठा है कि इस काल में नहीं होता। ऐसा ही प्रश्न वहाँ है। मोक्षमार्गप्रकाशक। यह काल नीच है, हीन है तो केवलज्ञान के लिये हीन है। क्या स्वरूप के अनुभव के लिये हीन है? उसमें लिखा है। कहाँ लिखा है, वह कुछ खबर नहीं। समझ में आया? कहीं ध्यान करने की बात है, भाई! सातवें में होगा। दोष निकाले हैं उसमें होगा। द्रव्यानुयोग के दोष (द्रव्यानुयोग में दोष कल्पना का निराकरण) निकाले वहाँ होगा। देखो! यहाँ है, यह रहा, लो। यह शब्द भी आये, देखो! **शंका :- यह काल निकृष्ट (हल्का) है, इसलिए उत्कृष्ट अध्यात्म के उपदेश की मुख्यता**

करनायोग्य नहीं। टोडरमलजी ने तो बहुत बात ली है।

समाधान :- यह काल साक्षात् मोक्ष नहीं होने की अपेक्षा से निकृष्ट है परन्तु आत्मानुभवनादिक सम्यक्त्वादिक होने की इस काल में मना नहीं है,... सबका कन्धा पकड़ा है। वैद्य है न। सबकी नाड़ी पकड़ी है। ना पाड़ते हैं। २९५ पृष्ठ गुजराती में है। **इसलिए आत्मानुभवनादिक के लिये द्रव्यानुयोग का अभ्यास अवश्य करना।** समझ में आया? भगवान कुन्दकुन्दाचार्य का दृष्टान्त (उद्धरण) दिया है। '**अज्ज वि तिरयणसुद्धा**' भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, **आज भी त्रिरत्न द्वारा शुद्ध जीव आत्मा को ध्याकर स्वर्ग लोक में अथवा लोकान्तिक में देवपना प्राप्त करते हैं।** कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, गाथा-७७। समझ में आया? अष्टपाहुड़ में मोक्षपाहुड़ में। मोक्षपाहुड़ में गाथा ७७ में कहा, '**अज्ज वि तिरयणसुद्धा**' तीन रत्न शुद्ध अभी भी होते हैं। केवलज्ञान नहीं होता। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की मनाही है? समझ में आया? तो निकृष्ट निकृष्ट करके ऐसे द्रव्यानुयोग का अभ्यास और अनुभव छोड़ देना कि नहीं होगा, नहीं होगा, क्या है? तुझे विषयकषायरूप रहना है? समझ में आया? बहुत बात की है। द्रव्यानुयोग का उपदेश आवश्यक है। गधे की व्याख्या वहाँ आयी। गधा मिश्री खाता है न? वही है। 'द्रव्यानुयोग में दोष-कल्पना का निराकरण'। मिश्री खाने से गधा मर जाये तो मनुष्य कोई मिश्री खाना छोड़ते नहीं। उसके बाद यह बात है। छोड़ दे? समझ में आया?

अध्यात्म भगवान चिदानन्द प्रभु सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ देवाधिदेव ने जो आत्मा कहा, उन्होंने तेरा आत्मा ऐसा ही देखा है। तेरा आत्मा भगवान ने ऐसा देखा है। कर्मरहित देखा है, क्योंकि कर्म तो अजीव है, शरीर अजीव है। भगवान ने ऐसा शरीरसहित देखा है? पुण्य-पाप के परिणाम आस्रव हैं। उनसे रहित भगवान ने तेरे आत्मा को शुद्ध आनन्दकन्द देखा है। समझ में आया? आस्रवतत्त्व। आस्रवतत्त्व रूप भगवान ने आत्मा देखा है? अजीवतत्त्व रूप देखा है भगवान ने? भगवान सर्वज्ञ ने क्या देखा है अन्दर में? आत्मा। तो आत्मा किसे कहा? पुण्य-पाप तो आस्रवतत्त्व है। शरीर, कर्म अजीव है। उनसे रहित आत्मा को भगवान ने देखा है कि यह तेरा आत्मा है। तेरा आत्मा ऐसा है, ऐसा भगवान ने कहा है और देखा है। तुम ऐसा देखो। समझ में आया?

मैं पुण्य-पाप, आस्रव और शरीरादि से रहित हूँ। ऐसा अन्तर में भेद को छोड़कर अभेद की दृष्टि करके आत्मा का अनुभव करना, वह आत्मख्याति है, वह सम्यग्दर्शन है। **इस प्रकार यह सर्व कथन निर्दोष है**-अमृतचन्द्राचार्य महाराज कहते हैं, देखो! '**इति समस्तमेव निरवद्यम**'। '**निरवद्यम**' है—यथार्थ बात है, ऐसा कहते हैं। सर्वज्ञ ने कही हुई बात (यथार्थ है)। लो, यहाँ तो अभी सम्यग्दर्शन की बात करते हैं। यहाँ कहाँ अभी संयम की या छठवें गुणस्थान की बात है? अरे! यहाँ चौथे गुणस्थान की बात है।

मुमुक्षु : चार दूने आठ।

पूज्य गुरुदेवश्री : आठ हो गये न। चार दूने आठ, ऐसा। चौथे चार, आठ अर्थात् डबल। भगवान स्वतन्त्र है। अरे! प्रभु! सम्यग्दर्शन अर्थात् तो... वहाँ दोपहर में नहीं आया? आया न? बन्ध नहीं, बन्ध नहीं। अज्ञान से होनेवाले बन्ध को ही बन्ध गिनने में आया है। अस्थिरता-बस्थिरता आदि है, वह तो बन्धपंक्ति में गिनने में आया है, ज्ञानपंक्ति में नहीं। आता है न! ७२ गाथा के भावार्थ में आता है। अब आयेगा, दोपहर में आयेगा।

भगवान आत्मा अपना ज्ञान शुद्ध चैतन्यप्रभु की दृष्टि करके आत्मख्याति सम्यग्दर्शन प्रगट किया तो अज्ञान का बन्ध है ही नहीं। बस, बन्ध नहीं तो अस्थिरता का थोड़ा बन्ध है, उसे बन्धपंक्ति में डाल दिया। ज्ञानपंक्ति के भेद में वह आता नहीं। समझ में आया? वह ज्ञान में ज्ञेय हो गया। जैसे परद्रव्य ज्ञेय है, वैसे ज्ञेय है। सम्यग्ज्ञान के जोर के कथन में वह आता है। नीचे अस्थिरता है, ख्याल है। समझ में आया?

इस प्रकार यह सर्व कथन... 'निरवद्यम' है। **निर्दोष है...** वस्तु का जैसा स्वरूप है, वैसा यह भाव है। ऐसा कहा गया है। देखो! मुनि पंच महाव्रतधारी सन्त अमृतचन्द्राचार्यदेव। भाई! इसे आत्मख्याति कहते हैं, भेद को आत्मख्याति नहीं कहते। आत्मा की प्रसिद्धि शुद्धस्वभाव की एकत्वबुद्धि से होती है। यही बात निर्दोष '**निरवद्यम**' और सत्य है, दूसरी बात सच्ची है नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार सत्य नहीं। वह स्वभाव की अपेक्षा से। है भले, विकल्पादि हो। अनुभूति की अपेक्षा से व्यवहार असत्यार्थ है। आहाहा! व्यवहार,

व्यवहार की अपेक्षा से हो। ज्ञान करने की चीज़ है। समझ में आया? गजब बात!

भावार्थ :- इन नव तत्त्वों में, शुद्धनय से देखा जाये तो... अर्थात् कि भेद में से निकलकर। ऐसा इसका अर्थ है। **तो जीव ही एक चैतन्य-चमत्कार मात्र प्रकाशरूप प्रगट हो रहा है,...** भावार्थ, भावार्थ। अकेला जानन... जानन... जानन... जानन... जानन... सत् ऐसा अकेला ज्ञायकभाव ही एकरूप प्रसिद्ध हो रहा है। **इसके अतिरिक्त भिन्न-भिन्न नव तत्त्व कुछ भी दिखायी नहीं देते।** देखो! अन्तर्मुख का ज्ञान करने से नौ भेद दिखते नहीं। नौ भेद बहिर्मुख की दृष्टि करने से नौ प्रकार के विकल्प दिखाई देते हैं। अन्तर्मुख में ये नौ तत्त्व के भेद दिखाई नहीं देते। गजब टीका की है न!

'जब तक इस प्रकार जीवतत्त्व का जानपना जीव को नहीं तब तक...' जब तक इस प्रकार से जीवतत्त्व का (अर्थात्) भगवान ज्ञायकस्वरूप एकरूप है, ऐसा अन्तर का जीव को ज्ञान नहीं, वहाँ तक वह व्यवहारदृष्टि है। व्यवहारदृष्टि अर्थात् बहिर्दृष्टि है। बहिर्दृष्टि अर्थात् अनादि की दृष्टि है, अकेली व्यवहारदृष्टि है, सम्यग्दर्शन है नहीं।

मुमुक्षु : व्यवहारदृष्टि....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह व्यवहारदृष्टि सम्यग्दृष्टि नहीं, मिथ्यादृष्टि है। ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ व्यवहार आया? व्यवहार-फ्यवहार आया कहाँ से? मूढ़ दृष्टि है। यहाँ व्यवहार मूढ़ कहते हैं। भेद दृष्टि है, एकान्त दृष्टि है, मिथ्यादृष्टि है।

मुमुक्षु : पहले व्यवहार बिना....

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले व्यवहार कहाँ से आया?

सीधे रागरहित चैतन्य की एकता बुद्धि होती है, उसका नाम निरपेक्ष, पर की अपेक्षा बिना का सम्यग्दर्शन कहते हैं। मार्ग ऐसा है, भाई! निरालम्बी निरपेक्ष राग से भिन्न। समझ में आया? मिथ्यादृष्टि है यहाँ तो। .....

जब तक इस प्रकार जीव तत्त्व की जानकारी जीव को नहीं है, तब तक वह व्यवहारदृष्टि है, भिन्न-भिन्न नव तत्त्वों को मानता है। उसमें एकरूप की दृष्टि हुई नहीं।

जीव पुद्गल की बन्धपर्यायरूप दृष्टि से यह पदार्थ भिन्न-भिन्न दिखायी देते हैं;... देखो! जीव और पुद्गल की बन्धपर्याय की अपेक्षा से देखो तो नौ-नौ भिन्न-भिन्न दिखते हैं। **किन्तु जब शुद्धनय से जीव-पुद्गल का निज स्वरूप भिन्न-भिन्न...** यह द्रव्य भिन्न, यह द्रव्य भिन्न, ऐसा। **देखा जाये तब वे पुण्य, पापादि सात तत्त्व कुछ भी वस्तु नहीं हैं;...** चैतन्य भगवान ज्ञायकस्वरूप में एकरूप में अनुभव करने से नौ कोई वस्तु ही नहीं। एक में नौ आते ही नहीं, नौ में एक है ही नहीं। एक में एक है। यह कथनी भी अभी घिस गयी। लोगों को यह कथनी सुनकर ऐसा लगता है कि, यह निश्चय है, निश्चय है। निश्चय अर्थात् सत्य। निश्चय अर्थात् '**निरवद्यम**'। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! चौथे गुणस्थान की कथनी है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे कथन कहाँ सुनना है? यहाँ तो अभी मिथ्यादृष्टि है, उसे कहते हैं कि तेरा एकरूप अनुभव करना, वह सम्यक् है। ऐसा कहते हैं यहाँ तो। अज्ञानी को तो समझाते हैं, जिसने सुना नहीं, उसे सुनाते हैं। यह तो पहले आ गया। श्रुत परिचित अनुभूत।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सातवेंवाले को क्या सुनाना है? समझ में आया? अनादि अप्रतिबुद्ध जीव को समझाया है। समझ में आया? यह गाथा आगे आ गयी है। यह कितनी है? १३वीं। आगे आयेगा। ३८वीं गाथा में है न? बारम्बार समझाते हैं। ३८, ३८ देखो! अन्त में जीव का पूरा होता है न ३८ गाथा? **जो, अनादि मोहरूप अज्ञान से उन्मत्तता के कारण अत्यन्त अप्रतिबुद्ध था...** (टीका की) पहली लाईन है। जीव का (अधिकार) पूरा करते हैं वहाँ। जीव (अधिकार की) ३८ गाथा है न? पश्चात् ३९ गाथा से अजीव चलता है। ३८ गाथा, ८० पृष्ठ। हिन्दी में ८० पृष्ठ। टीका की पहली लाईन। **जो, अनादि मोहरूप अज्ञान से उन्मत्तता के कारण अत्यन्त अप्रतिबुद्ध था और विरुक्त गुरु से निरन्तर समझाये जाने पर...** देखो!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : विरक्त अर्थात् राग से निवृत्त है। स्वरूप का भान है वह।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, नहीं। विरक्त गुरु का अर्थ यह। द्रव्यलिंगी होता ही नहीं। विरक्त अर्थात् राग से रहित आत्मा में एकत्वबुद्धि हो गयी है, उनके द्वारा समझाये जाने पर। द्रव्यलिंगी से नहीं, निमित्त नहीं होता। सम्यग्दर्शन में ऐसे निमित्त नहीं होते। क्या कहा है? देखो न!

विरक्त गुरु से निरन्तर समझाये जाने पर जो किसी प्रकार से समझकर, सावधान होकर, जैसे कोई मुट्ठी में रखे हुए सुवर्ण को भूल गया हो... ...यहाँ तो अनादि मोह अज्ञान उन्मत्तता के कारण से। इतने तो शब्द प्रयोग किये हैं। और अनादि अज्ञान से उन्मत्तता के कारण से अत्यन्त अप्रतिबुद्ध था। उसे समझाया। ३८ में जीव अधिकार पूरा करते हैं। पश्चात् ३९ में (अजीव अधिकार लेते हैं)। समझ में आया? बारम्बार समझाया, हों! **गुरु से निरन्तर समझाये जाने पर जो किसी प्रकार से समझकर,...**

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो कहते हैं, गुरु से निरन्तर समझाये जाने पर, इसकी व्याख्या क्या? रोज समझाने की व्याख्या क्या? फुरसत में है? इसकी व्याख्या यह है कि जो सुना है, उसे बारम्बार याद करता है, उसका नाम गुरु ने बारम्बार समझाया। गुरु तो अमुक समय बैठे हों। ध्यान में बैठे हों। यहाँ तो पाठ ऐसा है कि **निरन्तर समझाये जाने पर...** करो अर्थ।

मुमुक्षु : .... रोज समझाना पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : रोज समझाना पड़े कहाँ से? फुरसत में हैं वे? समझ में आया? परन्तु समझनेवाले को बारम्बार रटन होता है तो उसे गुरु ने निरन्तर समझाया, ऐसा कहा जाता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : जवाबदारी किसी की नहीं। जवाबदारी इसकी स्वयं की है। निरन्तर समझाये कहाँ? गुरु निरन्तर (समझाये)? साधु हो तो सप्तम गुणस्थान में भी कहते हैं? ध्यान में रहे और लोगों को समझावे? किसी समय धर्मलोभी जीव को समझाने की इच्छा होती है तो समझाते हैं। किसी समय धर्मलोभी को। आता है न? मोक्षमार्गप्रकाशक में आता है। धर्मलोभी जीव है, ऐसा दिखाई दे तो समझाने की इच्छा होती है। निरन्तर कहाँ से हो? यहाँ तो समझनेवाला है, वह समझानेवाले की पद्धति का बारम्बार रटन करता है। इसलिए गुरु द्वारा निरन्तर समझाया, ऐसा कहा जाता है। इस प्रकार पूरी बात में अन्तर है, भाई! शब्द के अर्थ में अन्तर है। आचार्य की शैली कोई ऐसी है। ऐसा का ऐसा सीधे अर्थ करे, निरन्तर समझाये जाने पर। तो पाँच-दस वर्ष निरन्तर समझावे? अवधि कितनी? वह समझे वहाँ तक, निरन्तर रटन करे वहाँ तक, ऐसा। समझ में आया?

कहा न कुन्दकुन्दाचार्य ने? हमारे गुरु ने हमारे ऊपर अनुग्रह करके। पाँचवीं गाथा में कहा। कुन्दकुन्दाचार्य ने। शुद्धात्मतत्त्व का उपदेश दिया। बस, इतना। हमारे गुरु ने अनुग्रह करके हमारे ऊपर, सर्वज्ञ महाराज से चली आयी हुई वाणी। भगवान ने भी ऐसा कहा। परगुरु, अपरगुरु हमारे गुरुपर्यन्त सबने हमारे ऊपर अनुग्रह करके—कृपा करके शुद्ध तत्त्व का उपदेश दिया। शुद्ध भगवान आत्मा, ऐसा उपदेश दिया। इतना उपदेश दिया तो हम समझ गये। समझ में आया?

मुमुक्षु : यह तो महापुरुष को .... हमारे जैसों को क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहते हैं, इस भाषा का अर्थ इसे बारम्बार विचार करना। बारम्बार इसे विचार करना। बारम्बार मनन करना जो उपदेश सुना है, उसका बारम्बार रटन करना। ऐसी बात है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा हुआ है। बारम्बार पकड़ा। उनका कहा हुआ ही वह निरन्तर समझता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ द्रव्यलिंगी नहीं। यहाँ तो अकेले भावलिंगी सन्त हैं, वे ही समझाते हैं। समझ में आया? तब उनकी देशना निमित्त पड़ती है। पहले भी आया है। पहले चौथी गाथा में आया है। स्वयं समझा नहीं और आत्मज्ञानी की सेवा की नहीं। ऐसा तीसरी गाथा में आया है। आत्मज्ञानी की सेवा की नहीं, ऐसा कहा है। तीसरी गाथा में आया है। तीसरी देखो! यहाँ तो सब स्पष्टीकरण एक-एक के हुए हैं। आहाहा! देखो! चौथी, चौथी (गाथा में)। **अपने में अनात्मज्ञपना होने से (-स्वयं आत्मा को नहीं जानता होने से) और दूसरे आत्मा को जाननेवालों की संगति-सेवा नहीं की होने से...** (टीका में अन्त में) भावार्थ के ऊपर है। १३ पृष्ठ **दूसरे आत्मा को जाननेवालों की संगति-सेवा नहीं की होने से...** जाननेवालों। स्वयं को तो ज्ञान है नहीं, परन्तु आत्मज्ञानी की सेवा नहीं की। सेवा नहीं की, इसका अर्थ यथार्थ रीति से उसकी रुचि नहीं हुई, सुनने से रुचि नहीं हुई। तो आत्मज्ञानी का सुनना, वही वहाँ आता है।

मुमुक्षु : मुनि....

पूज्य गुरुदेवश्री : मुनि... भाव ऐसा है। नाम पाड़ने से क्या हुआ? कहो, समझ में आया? क्या कहते हैं? देखो!

जीव-पुद्गल का निज स्वरूप भिन्न-भिन्न देखा जाये तब वे पुण्य, पापादि सात तत्त्व कुछ भी वस्तु नहीं हैं; वे निमित्त-नैमित्तिकभाव से हुए थे, इसलिए जब वह निमित्त-नैमित्तिकभाव मिट गया, तब जीव, पुद्गल भिन्न-भिन्न होने से अन्य कोई वस्तु (पदार्थ) सिद्ध नहीं हो सकती। अकेला आत्मा सिद्ध हो गया। शुद्ध आत्मा अभेद अपनी दृष्टि में आ गया। पुद्गल पृथक् पड़ गया। **वस्तु तो द्रव्य है, और द्रव्य का निजभाव द्रव्य के साथ ही रहता है...** शुद्धस्वभाव की एकता वह द्रव्य के साथ रह गयी। नौ के भेद का विकल्प छूट गया। **तथा निमित्त-नैमित्तिकभाव का अभाव ही होता है, इसलिए शुद्धनय से जीव को जानने से ही सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो सकती है।** देखो! **जब तक भिन्न-भिन्न नव पदार्थों को जाने, और शुद्धनय से आत्मा को न जाने तब तक पर्यायबुद्धि है।** वहाँ व्यवहार दृष्टि कही थी, यहाँ पर्यायबुद्धि कही। ऊपर (कहा था), वहाँ तक व्यवहार दृष्टि है, वहाँ तक पर्यायबुद्धि है, वहाँ तक मिथ्यादृष्टि है। अकेली व्यवहार दृष्टि

है। स्वभाव का भान होकर व्यवहार को जाने, वह अलग बात है, यह तो अकेले व्यवहार की बात है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आश्रय-बाश्रय नहीं। व्यवहार का आश्रय मानना, वही मिथ्यात्व है। उससे लाभ मानना, वही मिथ्यात्व है। समझ में आया? आहाहा! यह गाथा हुई। अब इसका कलश कहते हैं। बोलो, पण्डितजी!

★ ★ ★

कलश - ८

यहाँ, इस अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं :-

(मालिनी)

चिर-मिति नवतत्त्वच्छन्न-मुन्नीयमानं,
कनक-मिव निमग्नं वर्णमाला-कलापे।
अथ सतत-विविक्तं दृश्यता-मेकरूपं,
प्रतिपदमिदमात्मज्योतिरुद्योतमानम् ।।8।।

अथैवमेकत्वेन द्योतमानस्यात्मनोऽधिगमोपायाः प्रमाणनयनिक्षेपाः ये ते खल्वभूतार्था-स्तेष्वप्ययमेक एव भूतार्थः।

प्रमाणं तावत्परोक्षं प्रत्यक्षं च। तत्रोपात्तानुपात्तपरद्वारेण प्रवर्तमानं परोक्षं केवलात्म-प्रतिनियतत्वेन प्रवर्तमानं प्रत्यक्षं च। तदुभयमपि प्रमातृप्रमाणप्रमिति-प्रमेयभेदस्यानुभूयमानतायां भूतार्थं, अथ च व्युदस्तसमस्तभेदैकजीवस्वभावस्या-नुभूयमानतायामभूतार्थम्।

नयस्तु द्रव्यार्थिकः पर्यायार्थिकश्च। तत्र द्रव्यपर्यायात्मके वस्तुनि द्रव्यं मुख्यतया-नुभावयतीति द्रव्यार्थिकः, पर्यायं मुख्यतयानुभावयतीति पर्यायार्थिकः। तदुभयमपि द्रव्यपर्याययोः पर्यायेणानुभूयमानतायां भूतार्थं, अथ च द्रव्यपर्याया-नालीढशुद्धवस्तुमात्रजीवस्वभाव-स्यानुभूयमानतायाम-भूतार्थम्।

निक्षेपस्तु नाम स्थापना द्रव्यं भावश्च। तत्रातद्गुणे वस्तुनि सञ्ज्ञाकरणं नाम। सोऽयमित्यन्यत्र प्रतिनिधिव्यवस्थापनं स्थापना। वर्तमानतत्पर्यायादन्यद् द्रव्यम्। वर्तमानतत्पर्यायो

भावः। तच्चतुष्टयं स्वस्वलक्षणवैलक्षण्येनानुभूयमानतायां भूतार्थं, अथ च निर्विलक्षणस्वलक्षणैक-जीवस्वभावस्यानु-भूयमानतायामभूतार्थम्।

अथैवममीषु प्रमाणनयनिक्षेपेषु भूतार्थत्वेनैको जीव एव प्रद्योतते।

श्लोकार्थ : [इति] इस प्रकार [चिरम्-नव-तत्त्व-च्छन्नम् इदम् आत्मज्योतिः] नव तत्त्वों में बहुत समय से छिपी हुई यह आत्मज्योति [उन्नीयमानं] शुद्धनय से बाहर निकालकर प्रगट की गयी है, [वर्णमाला-कलापे निमग्नं कनकम् इव] जैसे वर्णों के समूह में छिपे हुए एकाकार स्वर्ण को बाहर निकालते हैं। [अथ] इसलिए अब हे भव्य जीवों! [सततविविक्तं] इसे सदा अन्य द्रव्यों से तथा उनसे होनेवाले नैमित्तिक भावों से भिन्न, [एकरूपं] एकरूप [दृश्यताम्] देखो। [प्रतिपदम् उद्योतमानम्] यह (ज्योति), पद-पद पर अर्थात् प्रत्येक पर्याय में एकरूप चित्चमत्कारमात्र उद्योतमान है।

भावार्थ : यह आत्मा सर्व अवस्थाओं में विविधरूप से दिखायी देती था, उसे शुद्धनय ने एक चैतन्य-चमत्कारमात्र दिखाया है; इसलिए अब उसे सदा एकाकार ही अनुभव करो, पर्यायबुद्धि का एकान्त मत रखो - ऐसा श्री गुरुओं का उपदेश है।।8।।

टीका : अब, जैसे नव तत्त्वों में एक जीव को ही जानना भूतार्थ कहा है, उसी प्रकार, एकरूप से प्रकाशमान आत्मा के अधिगम के उपाय जो प्रमाण, नय, निक्षेप हैं, वे भी निश्चय से अभूतार्थ हैं, उनमें भी यह आत्मा एक ही भूतार्थ है (क्योंकि ज्ञेय और वचन के भेदों से प्रमाणादि अनेक भेदरूप होते हैं)। उनमें से पहले, प्रमाण दो प्रकार के हैं - परोक्ष और प्रत्यक्ष। उपात्त[1] और अनुपात्त[2] पर (पदार्थों) द्वारा प्रवर्ते, वह परोक्ष है और केवल आत्मा से ही प्रतिनिश्चितरूप से प्रवृत्ति करे, सो प्रत्यक्ष है। (प्रमाण ज्ञान है। वह ज्ञान पाँच प्रकार का है - मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवल। उनमें से मति और श्रुतज्ञान परोक्ष हैं, अवधि और मनःपर्ययज्ञान विकल-प्रत्यक्ष हैं और केवलज्ञान सकल-प्रत्यक्ष हैं। इसलिए यह दो प्रकार के प्रमाण हैं।) वे दोनों प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय के भेद का अनुभव करने पर तो भूतार्थ हैं, सत्यार्थ हैं; और जिसमें सर्वभेद गौण हो गये हैं, ऐसे एक जीव के स्वभाव का अनुभव करने पर वे अभूतार्थ हैं, असत्यार्थ हैं।

नय दो प्रकार के हैं - द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक। वहाँ द्रव्य-पर्यायस्वरूप वस्तु में द्रव्य का मुख्यता से अनुभव कराये, सो द्रव्यार्थिक नय है और पर्याय का

मुख्यता से अनुभव कराये, सो पर्यायार्थिकनय है। यह दोनों नय द्रव्य और पर्याय का पर्याय से (भेद से, क्रम से) अनुभव करने पर तो भूतार्थ हैं, सत्यार्थ हैं; और द्रव्य तथा पर्याय दोनों से अनालिंगित (आलिंगन नहीं किया हुआ) शुद्ध वस्तुमात्र जीव के (चैतन्यमात्र) स्वभाव का अनुभव करने पर वे अभूतार्थ हैं, असत्यार्थ हैं।

निक्षेप के चार भेद हैं – नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव। वस्तु में जो गुण न हो, उस गुण के नाम से (व्यवहार के लिए) वस्तु की संज्ञा करना, सो नाम निक्षेप है। 'यह वह है' इस प्रकार अन्य वस्तु में अन्य वस्तु का प्रतिनिधित्व स्थापित करना (–प्रतिमारूप स्थापन करना), सो स्थापना निक्षेप है। वर्तमान से अन्य अर्थात् अतीत अथवा अनागत पर्याय से वस्तु को वर्तमान में कहना, सो द्रव्य निक्षेप है। वर्तमान पर्याय से वस्तु को वर्तमान में कहना, सो भाव निक्षेप है। इन चारों निक्षेपों का अपने अपने लक्षणभेद से (विलक्षणरूप से–भिन्न–भिन्नरूप से) अनुभव किये जाने पर वे भूतार्थ हैं, सत्यार्थ हैं और भिन्न लक्षण से रहित एक अपने चैतन्यलक्षणरूप जीवस्वभाव का अनुभव करने पर वे चारों ही अभूतार्थ हैं, असत्यार्थ हैं। इस प्रकार इन प्रमाण–नय–निक्षेपों में भूतार्थरूप से एक जीव ही प्रकाशमान है।

भावार्थ : इन प्रमाण, नय, निक्षेपों का विस्तार से कथन तद्विषयक ग्रन्थों से जानना चाहिए; उनसे द्रव्य–पर्यायस्वरूप वस्तु की सिद्धि होती है। वे साधक अवस्था में तो सत्यार्थ ही हैं क्योंकि वे ज्ञान के ही विशेष हैं। उनके बिना वस्तु को चाहे जैसे साधा जाये तो विपर्यय हो जाता है। अवस्थानुसार व्यवहार के अभाव की तीन रीतियाँ हैं : प्रथम अवस्था में प्रमाणादि से यथार्थ वस्तु को जानकर ज्ञान–श्रद्धान की सिद्धि करना; ज्ञान–श्रद्धान के सिद्ध होने पर श्रद्धान के लिये प्रमाणादि की कोई आवश्यकता नहीं है। किन्तु अब यह दूसरी अवस्था में प्रमाणादि के आलम्बन से विशेष ज्ञान होता है और राग–द्वेष–मोहकर्म का सर्वथा अभावरूप यथाख्यातचारित्र प्रगट होता है; उससे केवलज्ञान की प्राप्ति होती है। केवलज्ञान होने के पश्चात् प्रमाणादि का आलम्बन नहीं रहता। तत्पश्चात् तीसरी साक्षात् सिद्ध अवस्था है, वहाँ भी कोई आलम्बन नहीं है। इस प्रकार सिद्ध अवस्था में प्रमाण–नय–निक्षेप का अभाव ही है।

कलश - ८ पर प्रवचन

चिरमिति नवतत्त्वच्छन्न-मुन्नीयमानं,
कनकमिव निमग्नं वर्णमालाकलापे।
अथ सततविविक्तं दृश्यतामेकरूपं
प्रतिपदमिदमात्मज्योतिरुद्योतमानम्॥८॥

श्लोकार्थ :- इस प्रकार नव तत्त्वों में बहुत समय से छिपी हुई यह आत्मज्योति... ढँक गयी थी, देखो! नौ तत्त्व के विकल्प में भगवान एकरूप ढँक गया था। आहाहा! कर्म से ढँका हुआ था, ऐसा नहीं। मैं जीव हूँ और यह अजीव है और यह आस्रव है और यह पुण्य है—ऐसे नौ तत्त्व के पर्यायबुद्धि से विकल्प जो उठाता है, उसमें भगवान एकरूप ढँक गया था। आहाहा! **नव तत्त्वों में बहुत समय से छिपी हुई यह आत्मज्योति शुद्धनय से बाहर निकालकर प्रगट की गयी है,...** एक स्वरूप शुद्ध चैतन्यमूर्ति है, ऐसा दिखलाकर बतलाया कि यह आत्मा। नौ तत्त्व के भेद करना, वह आत्मा नहीं।

जैसे वर्णों के समूह में छिपे हुए... सोना होता है न? सोना। कुलडी। कुलडी को क्या कहते हैं? वह सोनी की... करते हैं न? वर्णमाला उत्पन्न होती है न? रंग। सोना को अग्नि देते हैं न, तो रंग उत्पन्न होते हैं। उसमें से सोना निकाल लिया, अकेला सोना। कुलड़ी नहीं होती? कुलड़ी में डालकर (तपाते हैं)। जो तुम्हारा शब्द हो वह। एकाकार सुवर्ण को बाहर निकालते हैं। अग्नि का ताप देकर जैसी वर्णमाला भिन्न-भिन्न है, उसमें से अकेला सोना बाहर निकालते हैं।

इसलिए हे भव्य जीवों! देखो! नौ तत्त्व के विकल्प वह वर्णमाला समान है। उसमें से एक आत्मा निकालना, वह आत्मा है। आहाहा! **वर्णों के समूह में छिपे हुए एकाकार...** देखो! वर्ण के रंग जो उठते हैं कथीर या ताँबा, उसके अन्दर छिपा हुआ सोना भिन्न एकाकार है। उसी प्रकार बन्धपर्याय की दृष्टि से नौ तत्त्व के विकल्प उठते हैं, परन्तु भगवान चैतन्य एकाकार ढँका हुआ है। **हे भव्य जीवों! उसे सदा अन्य द्रव्यों से तथा उनसे होनेवाले नैमित्तिक भावों से भिन्न,...** विकार आदि भाव से भिन्न **एकरूप देखो।** आहाहा! चैतन्य का अन्तर स्वरूप एकाकार ज्ञायकरूप देखो। अन्तर स्वभाव

एकरूप ज्ञायकरूप देखो। वही सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? **यह (ज्योति)...** कहा न?

मुमुक्षु : कलशटीका में ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कलशटीका उसमें से? **'चिरमिति नवतत्त्व'**। क्या कहा है? देखो! **जीवद्रव्य का शुद्ध ज्ञानमात्र,... 'आत्मज्योतिः दृश्यताम्'** इसका अर्थ होता है। **जीवद्रव्य का शुद्ध ज्ञानमात्र,... 'दृश्यताम्'** 'सर्वथा अनुभवरूप हो।' देखो! **'दृश्यताम्'** का अर्थ यह। देखो, देखो का अर्थ **सर्वथा अनुभवरूप हो।** अनुभवरूप हो। भाषा कैसी है! सर्वथा। **कैसी है आत्मज्योति? 'चिरमिति नवतत्त्वच्छन्नं, अथ सततविविक्तं' इस अवसर में नाट्यरस की भाँति एक जीववस्तु आश्चर्यकारी अनेक भावरूप एक ही समय में दिखाई देती है, इसी कारण से इस शास्त्र का नाम नाटक समयसार है। वही कहते हैं—अमर्याद काल से जो विभावरूप रागादि परिणाम-पर्यायमात्र विचारने में आवे तो...** अमर्याद अनादि काल से विकार की पर्याय से भेद से विचारने में आवे तो **ज्ञानवस्तु पूर्वोक्त जीवादि नौ तत्त्वरूप से आच्छादित है।** विकल्प के नौ तत्त्व के भेद से भगवान चैतन्यमूर्ति एकरूप ढँका हुआ है। समझ में आया?

मुमुक्षु : .... ढँक गया?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, विकल्प की आड़ में ढँक गया। धुआँ निकलता है न? धुआँ। धुएँ में ढँक गया। ... जब लापसी रांधते हैं न? लापसी समझते हो? कंसार। कंसार कहते हैं? क्या कहते हैं? हलुवा नहीं। लापसी बनावे न? नया वर्ष लगे, तब मांगलिक के लिये जीमने में नहीं बनाते? क्या कहते हैं? तुम्हारा हिन्दी में नाम नहीं? कंसार कहते हैं न? गेहूँ के आटा को बराबर करके सेंकते हैं न। हलुवा तो शीरा को कहा जाता है। लापसी... लापसी कहते हैं।

मुमुक्षु : लापसी कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : लापसी तो कहते हैं। हलुआ नहीं। गेहूँ के आटा को बाफते हैं... लुपरी नहीं। सुनो, सुनो। गेहूँ के आटा में गुड़ डालकर, बेलन डालकर बराबर... बेलन समझते हो? बेलन होता है न? बेलन। स्त्री उसे घूँटती है। वरना आटे का ... जम

जाये। गाँठें हो जाये। सुना है या नहीं? देखा है या नहीं कभी? आटा में (बेलन) डालकर घूँटते हैं। क्योंकि आटा की गाँठें हो जाये। उसकी लापसी पोची होती है। जो तपेले में हो परन्तु उसके नीचे गीली लकड़ियाँ हो तो उसमें से धुआँ निकलता है। पूरे चूल्हे में धुआँ ही दिखाई देता है। लापसी तो अन्दर रह गयी। बाहर धुआँ ही दिखता है। अन्दर लापसी है, उसकी खबर नहीं।

उसी प्रकार आत्मा चिदानन्द भगवान ज्ञानमूर्ति एकरूप स्वभाव लापसी अन्दर आनन्दकन्द है, वह नौ तत्त्व के विकल्प के धुएँ में ढँक गयी है। हम दृष्टान्त देते हैं, उसमें काठियावाड़ी भाषा होवे तो बराबर कहा जाये। तुम्हारी भाषा तो खोजनी पड़े। लापसी बनाते हैं, लापसी। तपेला हो न? तपेला। चूल्हे के ऊपर तपेला होता है न। गीली लकड़ियाँ हों तो अग्नि में से धुआँ निकले। चूल्हे में चारों ओर धुआँ धुआँ दिखता है। लापसी तो अन्दर रह गयी। उसी प्रकार भगवान चैतन्य आनन्दकन्द पूरा पड़ा है, वह नौ तत्त्व के विकल्प के धुएँ में ढँक गया है। समझ में आया? हमारी गुजराती चलती हो, तब दृष्टान्त भी गुजराती में चलते हैं। वह चले तो स्पष्ट चले। समझ में आया? आहाहा!

भगवान आत्मा एक स्वरूप अतीन्द्रिय आनन्दमय मूर्ति प्रभु है। वह नौ तत्त्व के भेद से आच्छादित है। ढँक गया है। अपने कारण से, हों! पर के कारण से नहीं। विकल्प भेद उठाया। जीव हूँ और यह अजीव है, आस्रव है और पुण्य है और पाप है—ऐसे बन्धपर्याय के ऊपर लक्ष्य होने से नौ प्रकार के विकल्प उठाये। विकल्प उठाये उसमें एकरूप ढँक गया है। स्वयं के कारण से है, कर्म के कारण से नहीं। आहाहा! कर्म जड़ हैं। 'कर्म बिचारे कौन, भूल मेरी अधिकाई, अग्नि सहे घनघात लोह की संगति पाई।' अग्नि अकेली हो तो (कोई) घण मारता है? नहीं मारता। अकेली अग्नि को घण नहीं मारते। अग्नि लोहे में प्रविष्ट हो तो घण मारते हैं। इसी प्रकार भगवान आत्मा कर्म का संग करता है तो राग-द्वेष उत्पन्न होते हैं। स्वभाव में होते नहीं। संग करे तो उत्पन्न होते हैं, तो दुःखी होता है। समझ में आया?

नौ तत्त्व के विकल्प में भगवान चैतन्यस्वरूप एकरूप ढँक गया। अनेकता के लक्ष्य में रहने से एकरूप स्वभाव ढँक गया है, ऐसा कहते हैं, लो। समझ में आया?

जीव-अजीव नौ तत्त्व के भेदरूप, व्यवहाररूप, पर्यायरूप दृष्टि में त्रिकाली ज्ञायक भगवान आच्छादित हो गया। ओझल हो गया, दृष्टि में से ओझल हो गया। समझ में आया?

भावार्थ इस प्रकार है कि जीववस्तु अनादि काल से धातु और पाषाण के संयोग के समान कर्म-पर्याय से मिली हुई ही चली आ रही है, सो मिली हुई होकर वह रागादि विभावपरिणामों के साथ व्याप्य-व्यापकरूप से स्वयं परिणमन कर रही है। रागादि के परिणाम व्याप्यरूप से परिणम रहे हैं। बिल्कुल रागरूप परिणमी नहीं, ऐसा नहीं है। अनादि से राग-द्वेष विकाररूप परिणम रहा है। विकारी परिणाम व्याप्य और आत्मा व्यापक, ऐसा हो रहा है।

वह परिणमन देखा जाये... समझे? **जीव का स्वरूप न देखा जाये तो जीववस्तु नौ तत्त्वरूप है, ऐसा दृष्टि में आता है।** क्या कहते हैं? रागरूप परिणमता है, पुण्यरूप परिणमता है, आस्रवरूप परिणमता है। ऐसा यदि देखा जाये, जीव का त्रिकाली स्वरूप न देखा जाये तो जीव नौ तत्त्वरूप परिणमता है। **ऐसा भी है, सर्वथा झूठ नहीं है।** नौ तत्त्वरूप पर्याय में हुआ नहीं, ऐसा है नहीं। समझ में आया? आहाहा! नौ तत्त्व अशुद्धता में न हो तो उसमें से निकालकर शुद्धता कहाँ से आयेगी? समझ में आया? नौ तत्त्व पर्यायरूप है, परन्तु वे अशुद्ध हैं, भेद हैं। उनकी दृष्टि करने से तो मिथ्यात्व है। आहाहा! **सर्वथा झूठ नहीं। क्योंकि विभावरूप रागादि परिणमनशक्ति जीव में ही है।** कहो, समझ में आया?

जीववस्तु द्रव्यरूप है, अपने गुण-पर्यायों में विराजमान है। जो शुद्ध द्रव्यस्वरूप देखा जाये, पर्यायस्वरूप न देखा जाये तो वह कैसी है? निरन्तर नौ तत्त्वों के विकल्प से रहित है, शुद्ध वस्तुमात्र है। भावार्थ इस प्रकार है कि शुद्धस्वरूप का अनुभव सम्यक्त्व है। देखो! भगवान एक स्वरूप चैतन्य, वह नौ के विकल्प का (लक्ष्य) छोड़कर एक स्वरूप के अनुभव का नाम सम्यग्दर्शन है। देखो! यहाँ भी लिया है। **शुद्धस्वरूप का अनुभव सम्यक्त्व है।** आनन्द का होना, आनन्द का स्वाद आना, सम्यग्दर्शन में आनन्द होत है, उसका नाम अनुभव और सम्यक्त्व है। अकेला आत्मा मानना, मानना श्रद्धा हुई, ऐसा नहीं। समझ में आया?

जैसे एक ही सोना वानभेद से अनेकरूप कहा जाता है, वैसे एक ही जीववस्तु

द्रव्य-गुण-पर्यायरूप से अनेकरूप अथवा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप से अनेकरूप कही जाती है। देखो! एक ओर जीव के नौ तत्त्व के भेद और उसमें ही द्रव्य-गुण-पर्याय के भेद, उसमें ही उत्पाद-व्यय के अनेकरूप भेद देखना, वहाँ तक तो व्यवहारदृष्टि है। उसकी एकरूप दृष्टि नहीं हुई। द्रव्य-गुण-पर्याय में से अकेला द्रव्य निकालना। आहाहा! समझ में आया? **द्रव्य-गुण-पर्यायरूप अथवा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप अथवा दृष्टान्त की अपेक्षा से वानभेदरूप जितने भेद हैं, उन सब भेदों में भी स्वयं (एक) ही है।** उत्पाद-व्यय में अकेला ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... भगवान, वही आत्मा है। समझ में आया?

सुवर्णमात्र न देखा जाये, वानभेदमात्र देखा जाये तो वानभेद है; सोना की शक्ति ऐसी भी है; जो वानभेद न देखा जाये, केवल सुवर्णमात्र देखा जाये, तो वानभेद झूठे हैं;... समझ में आया? **उसी प्रकार जो शुद्ध जीववस्तुमात्र न देखा जाये, गुण-पर्यायमात्र अथवा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमय देखा जाये तो, गुण-पर्यायें हैं, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य है...** पर्यायभेद है। **जीववस्तु ऐसी भी है; जो गुण-पर्यायभेद अथवा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यभेद न देखा जाये, वस्तुमात्र देखा जाये तो समस्त भेद झूठे हैं। ऐसा अनुभव सम्यक्त्व है।** द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों भी नहीं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : भेद ही....

पूज्य गुरुदेवश्री : भेद की दृष्टि ही अभेद में नहीं आने देती। यह द्रव्य है, यह गुण है, यह पर्याय है, ऐसे भेद से तो विकल्प उत्पन्न होते हैं। भेद की दृष्टि से विकल्प उत्पन्न होते हैं, राग उत्पन्न होता है। उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीन का भी लक्ष्य करने से भी राग उत्पन्न होता है। आहाहा! यह तो कलशटीका में बहुत अच्छा लिया है। समझे? कलशटीका में बहुत अच्छा लिया है। आहाहा!

ऐसी आत्मज्योति **चेतनालक्षण से ज्ञात होती है, इसलिए अनुभवगोचर भी है। अब दूसरा पक्ष-प्रत्यक्ष ज्ञानगोचर है।** प्रत्यक्ष ज्ञानगम्य अनुभवगम्य है। **भेदबुद्धि करने से जीववस्तु चेतनालक्षण से जीव को जानती है। वस्तु विचारने पर इतना विकल्प भी झूठा है।** कहाँ ले गये? देखो! पहले नौ तत्त्व लिये। वे भेदरूप। फिर द्रव्य-गुण-पर्याय तीन भेदरूप। फिर, उत्पाद-व्यय-ध्रुव भेदरूप। पश्चात् ज्ञान आत्मा को जानता है, यह चेतना, वह आत्मा का लक्षण है ऐसा भेद, भेदरूप। आहाहा! **भेदबुद्धि करने से**

जीववस्तु चेतनालक्षण से जीव को जानती है। वस्तु विचारने पर इतना विकल्प भी झूठा है... आहाहा! यह चेतना, यह चेतन। चेतना, वह आत्मा —ऐसा भेदविकल्प झूठा है। ओहो! समझ में आया? नौ तत्त्व में से निकालते... निकालते... निकालते... दो भेद भी निकाल दिये।

मुमुक्षु : भेद का काम नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : काम नहीं। अकेला चैतन्य भगवान। समझ में आया? वही दृष्टि में आने पर अनुभव और सम्यग्दर्शन होता है। ऐसी बात है।

अनेक में एक कहाँ से भासित हो? भेद में अभेद कहाँ से भासित हो? तीन में एक कहाँ से भासित हो? दो में एक कहाँ से भासित हो? चेतना लक्षणवाला आत्मा, यह तो दो हुए। वह भी छूटकर (अनुभव होता है)। आहाहा! राजमल टीकाकार ने भी टीका की है न! 'पांडे राजमल जैन धर्मी, समयसार नाटक के मर्मी।' ऐसा बनारसीदास ने कहा है। वह तो है न। समयसार नाटक इसमें से बनाया है। इसमें से बनाया है। कलशटीका में से बनाया है। उसमें लिखा है न? राजमल की टीका में से मैंने समयसार नाटक बनाया है। बहुत ऊँची बात है। लोग शान्ति से, मध्यस्थता से अपना आग्रह छोड़कर क्या वस्तु है — ऐसा समझे, सुने तो उन्हें पता लग जाये। ऐसा आग्रह नहीं रखना चाहिए कि हम ऐसा मानते थे, हमने ऐसा सुना था। अब सुना छोड़ न एक ओर। तुझे कल्याण करना हो, भगवान! ... आहा! ऐसा मनुष्यदेह, उसमें ऐसा भव मुश्किल से मिला। कितने? पाँच, पचास, साठ वर्ष। अनन्त काल... अनन्त काल... अनन्त काल... उसमें इतना काल। यहाँ से छूटा... प्रभु! तेरा कहाँ चौरासी में अवतार होगा? कहीं पता नहीं लगेगा। देह क्या? अवस्था क्या? पर्याप्ति, अपर्याप्ति कहाँ? इसलिए आत्मा एकरूप है, उसकी दृष्टि कर ले तो जन्म-मरण का अन्त आ जाये। समझ में आया? आहाहा!

ऐसा अनुभव सम्यक्त्व है। अन्त में लिया है, भाई! **ऐसा अनुभव सम्यक्त्व है।** अन्त में यह लिया है। पढ़ा है या नहीं? सेठ! यहाँ से ले गये हो या नहीं? रखा है? रखा है या वाँचा है? वाँचे परन्तु बहुत समझे नहीं। कहो, समझ में आया?

नौ तत्त्व में बहुत काल से छुपी हुई भगवान शुद्धनय अर्थात् अन्तर्मुख होने से एकरूप प्रगट की। **यह (ज्योति), पद पद पर अर्थात् प्रत्येक पर्याय में एकरूप चित्चमत्कारमात्र उद्योतमान है।** चाहे जैसी समय-समय की पर्याय हो। अन्तर में ध्रुव रूप तो एकरूप ही है। समझ में आया? एकेन्द्रिय पर्याय, दो इन्द्रिय पर्याय एक-एक समय की पर्याय में भी चैतन्य ध्रुव तो कायम एकरूप ही रहनेवाला है। एकेन्द्रिय पर्यायरूप हुआ नहीं, दो इन्द्रिय पर्यायरूप हुआ नहीं। तीन इन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय आदि पर्यायरूप हुआ नहीं। वह तो ध्रुव चैतन्यमूर्ति चैतन्य चमत्कार पर्याय-पर्याय में नित्य उद्योतमान ही है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हुआ ही नहीं। पर्यायरूप किस प्रकार हो? सामान्य ध्रुव है, वह पर्यायरूप से कहाँ से हो? आहाहा! उत्पाद-व्यय पर्यायरूप से हुआ नहीं। द्रव्य सामान्य है, वह पर्यायरूप से कहाँ से हो? पर्याय तो एक समय की अवस्था है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कलश का ही अर्थ है, कलश का ही अर्थ है। यह शब्दार्थ है। यह कलश है उसका। जो कलश है, उसका शब्दार्थ। समझ में आया?

भावार्थ :- **यह आत्मा सर्व अवस्थाओं में विविधरूप से दिखायी देता था, उसे शुद्धनय ने एक चैतन्य-चमत्कारमात्र दिखाया है; इसलिए अब उसे सदा एकाकार ही अनुभव करो, पर्यायबुद्धि का एकान्त मत रखो...** पर्याय है सही। उसके ऊपर एकान्त दृष्टि न करो, यहाँ दृष्टि करो। पश्चात् पर्याय जाननेयोग्य है, उसे जानो। **ऐसा श्री गुरुओं का उपदेश है।** ऐसा सन्तों का उपदेश है। ऐसा अनुभव करो और पर्याय का एकान्त न करो। भेद का एकान्त लक्ष्य न करो। भेद है, परन्तु अभेद की दृष्टि होने के पश्चात्, भेद है, वह जाननेयोग्य है। जाननेयोग्य है, आदरनेयोग्य नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)